INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY FUTURISTIC DEVELOPMENT

भारतीय ज्ञान परंपरा: लोक संस्कृति और लोक साहित्य

डॉ. संतोष कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

* Corresponding Author: **डॉ. संतोष कुमार सिंह**

Article Info

P-ISSN: 3051-3618
E-ISSN: 3051-3626
Volume: 06
Issue: 01
January - June 2025
Received: 07-11-2024
Accepted: 09-12-2024
Published: 12-01-2025
Page No: 125-126

सार
भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार लोक जीवन, लोक अनुभव और सामूहिक स्मृति में निहित है। लोक संस्कृति और लोक साहित्य इस परंपरा की जीवंत अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन्हें किसी एक जाति, समुदाय या भौगोलिक सीमा में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। लोक ज्ञान विज्ञान से भिन्न होते हुए भी उससे कमतर नहीं है, क्योंकि यह अनुभव, अंतःप्रज्ञा और प्रकृति के साथ सहजीवन पर आधारित होता है। यह शोध-पत्र लोक संस्कृति की अविभाज्यता, उसके संरक्षण तंत्र, लोक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के अंतर, तथा 'जाँता का गीत' जैसे उदाहरणों के माध्यम से लोक साहित्य की लोकतांत्रिक चेतना को विश्लेषित करता है। साथ ही यह प्रतिपादित करता है कि लोक केवल स्थानीय नहीं, बल्कि वैश्विक मानवीय मूल्यों का संवाहक है, जिसका केंद्र प्रकृति, मनुष्यता और प्राणीमात्र का कल्याण है।

DOI: https://doi.org/10.54660/IJMFD.2025.6.1.125-126

कुंजी शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोक ज्ञान, अंतःप्रज्ञा, जाँता का गीत, लोकतंत्र, प्रकृति, मनुष्यता

शोधपत्र

भारतीय ज्ञान परंपरा को यदि समग्रता में समझना हो तो उसका आरंभ लोक से ही करना होगा। लोक संस्कृति और लोक साहित्य किसी भी सभ्यता की जड़ें होते हैं। वे न केवल उस समाज के जीवन मूल्यों, विश्वासों और संघर्षों को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि उसकी बौद्धिक, नैतिक और संवेदनात्मक चेतना को भी दिशा देते हैं। भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश में लोक संस्कृति की भूमिका और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।लोक संस्कृति को प्रायः 'स्थानीय' या 'अशास्त्रीय' कहकर हाशिए पर रखा गया है, जबकि वास्तव में वही संस्कृति का सबसे जीवंत और लोकतांत्रिक रूप है। शास्त्र, ग्रंथ और संस्थाएँ बाद में आती हैं; लोक जीवन पहले होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में वेद, उपनिषद, पुराण और दर्शन—सभी की जड़ें किसी न किसी रूप में लोक जीवन से जुड़ी हुई हैं। यह शोध-पत्र इसी दृष्टि से लोक संस्कृति और लोक साहित्य को भारतीय ज्ञान परंपरा के केंद्रीय घटक के रूप में देखने का प्रयास करता है।लोक संस्कृतियों को विभाजित नहीं किया जा सकता। यह कथन केवल वैचारिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक सत्य है। सच्ची संस्कृतियों के कुछ मूल तत्व होते हैं जो सभी समाजों में समान रूप से पाए जाते हैं—जैसे जीवनानुभव, श्रम, संघर्ष, उत्सव, दुःख, प्रेम और मृत्यु-बोध। लोक संस्कृति इन्हीं अनुभवों से जन्म लेती है।लोक संस्कृति जहाँ जाती है, वहीं की हो जाती है। वह किसी बाहरी सत्ता की तरह नहीं आती, बल्कि स्थानीय जीवन के साथ घुल-मिल जाती है। वह वहाँ की मिट्टी से खाद और पानी लेकर उसी भूगोल का हिस्सा बन जाती है। यही कारण है कि लोक संस्कृतियों को किसी एक जाति, समुदाय या क्षेत्र विशेष से स्थायी रूप से जोड़ पाना संभव नहीं है।लोक संस्कृति का स्वरूप प्रवाहमान होता है। वह समय और समाज के साथ बदलती है, पर अपने मूल मानवीय तत्वों को नहीं छोड़ती। इस प्रवाह में ही उसकी शक्ति निहित है। यही कारण है कि लोक संस्कृति को बाँटने का हर प्रयास अंततः असफल सिद्ध होता है।लोक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के बीच का अंतर प्रायः गलत ढंग से समझा गया है।

विज्ञान को प्रामाणिक और लोक ज्ञान को अंधविश्वास मानने की प्रवृत्ति आधुनिक समय की एक बड़ी वैचारिक भूल है। लोक ज्ञान विज्ञान से अलग अवश्य है, पर उससे कमतर नहीं।विज्ञान तर्क, परीक्षण और प्रमाण पर आधारित होता है, जबकि लोक ज्ञान जीवनानुभव, स्मृति और अंतःप्रज्ञा (intuition) पर आधारित होता है। विज्ञान जहाँ विश्लेषण करता है, वहीं लोक ज्ञान समग्रता में देखता है। विज्ञान के पास सब कुछ होने के बावजूद अंतःप्रज्ञा नहीं होती, जबकि लोक समाज के पास यही उसकी सबसे बड़ी शक्ति होती है।सुनामी की घटना इसका सशक्त उदाहरण है। जब समुद्र में हलचल और प्रकृति के संकेत बदले, तब अनेक आदिवासी समुदायों ने अपने अनुभव और अंतःप्रज्ञा के आधार पर समय रहते सुरक्षित स्थानों की ओर प्रस्थान कर लिया। परिणामस्वरूप उनमें लगभग कोई जनहानि नहीं हुई। यह ज्ञान न तो किसी प्रयोगशाला से आया था, न किसी उपग्रह से—यह पीढ़ियों के संचित अनुभव से उपजा है ।भारतीय कृषि परंपरा भी लोक ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है। फसल चक्र, ऋतु ज्ञान, मिट्टी की पहचान, बीजों का चयन—ये सभी विज्ञान से पहले अनुभव के आधार पर विकसित हुए। किसान प्रकृति को केवल संसाधन नहीं, बल्कि सहचर मानता है।आधुनिक कृषि विज्ञान ने अनेक सुविधाएँ दी हैं, पर उसने प्रकृति के साथ उस आत्मीय संबंध को कमजोर भी किया है, जो लोक कृषि ज्ञान की आत्मा था। लोक संस्कृति में कृषि केवल उत्पादन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि जीवन और उत्सव का अंग है। यही कारण है कि लोक गीतों, त्योहारों और अनुष्ठानों में कृषि का विशेषलोक संस्कृति अपने संरक्षण के लिए किसी लिखित संविधान या संस्थागत ढाँचे पर निर्भर नहीं होती। उसका संरक्षण उसकी निरंतरता में निहित होता है। गीत, कथाएँ, कहावतें, अनुष्ठान और परंपराएँ—ये सभी लोक संस्कृति के संरक्षण के साधन हैं।स्त्रियाँ लोक संस्कृति की सबसे बड़ी वाहक होती हैं। श्रम के गीत, संस्कार गीत, जाँता, चक्की, सोहर, कजरी—ये सभी स्त्री जीवन से जुड़े हुए हैं। इनके माध्यम से लोक अनुभव पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होता रहता है।लोक संस्कृति न जाति से बँधी होती है, न समुदाय से, न ही किसी निश्चित भौगोलिक सीमा से। वह जहाँ मानवीय अनुभव है, वहाँ उपस्थित रहती है।'जाँता का गीत' लोक साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। यह गीत स्त्री के श्रम, पीड़ा और आंतरिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है। इसमें दलित चेतना का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है—स्त्री का शोषण, पारिवारिक उत्पीड़न और पुरुष-सत्तात्मक समाज से त्रस्त मन की वेदना।परंतु इस गीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह केवल दलित स्त्रियों तक सीमित नहीं है। इसे सवर्ण स्त्रियाँ भी गाती हैं। इसके रचयिता शिवनारायण सवर्ण जाति से हैं। यह तथ्य लोक साहित्य की लोकतांत्रिक प्रकृति को पूरी तरह स्पष्ट करता है।लोक साहित्य में अनुभव जाति से बड़ा होता है। जब पीड़ा साझा हो जाती है, तो वह किसी एक वर्ग की नहीं रह जाती। 'जाँता का गीत' इसी साझा मानवीय पीड़ा का गीत है। यही कारण है कि यह सामाजिक सीमाओं को तोड़कर व्यापक स्वीकृति प्राप्त करता है।देवी–देवताओं से जुड़े लोक गीत भी लोक संस्कृति की समावेशी चेतना को प्रकट करते हैं। लोक देवता किसी दूरस्थ, सर्वशक्तिमान सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के सहभागी के रूप में उपस्थित होते हैं। वे खेतों, जंगलों, नदियों और पशुओं से जुड़े होते हैं।इन गीतों में देवता न्याय, करुणा और संरक्षण के प्रतीक होते हैं, न कि सत्ता और भय के। यह लोक धार्मिकता शास्त्रीय धर्म से भिन्न है, क्योंकि इसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच दूरी नहीं, बल्कि आत्मीयता

आधुनिक समय में लोक परंपराएँ क्षीण हो रही हैं। बाजारवाद, तकनीक और शहरी जीवन-शैली ने लोक को 'पिछड़ा' या 'अप्रासंगिक' घोषित कर दिया है। परंतु यह एक गंभीर भ्रांति है।लोक केवल लोकल नहीं, बल्कि ग्लोबल है। पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन, मानवीय अलगाव—इन सभी समस्याओं का समाधान लोक ज्ञान में निहित है। लोक संस्कृति हमें प्रकृति के साथ सहअस्तित्व, संयम और करुणा का पाठ पढ़ाती है।भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक संस्कृति और लोक साहित्य केवल अतीत की स्मृतियाँ नहीं, बल्कि भविष्य की दिशाएँ हैं। वे हमें यह सिखाते हैं कि ज्ञान केवल पुस्तकों में नहीं, जीवन में भी होता है। 'जाँता का गीत' जैसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि लोक साहित्य सबसे अधिक लोकतांत्रिक, मानवीय और समावेशी ज्ञान रूप है।लोक संस्कृति का मूल आधार प्रकृति, मनुष्यता और प्राणीमात्र का कल्याण है। आज जब विश्व विभाजन, हिंसा और संकट से जूझ रहा है, तब भारतीय लोक परंपरा का यह संदेश और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद – साहित्य और संस्कृति
2. शुक्ल, रामचंद्र – हिंदी साहित्य का इतिहास
3. मिश्र, महादेव प्रसाद – लोक साहित्य
4. वर्मा, रामविलास – भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य
5. गुप्त, मैथिलीशरण – भारत-भारती
6. गुप्त, मैथिलीशरण – साकेत
7. सिंह, नामवर – छायावाद
8. त्रिपाठी, नगेन्द्र – लोक साहित्य का समाजशास्त्र
9. शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय
10. कपूर, कपिल – Indian Knowledge Systems
11. Pollock, Sheldon – The Language of the Gods
12. Fairclough, Norman – Language and Power
13. Williams, Raymond – Culture and Society
14. Dundes, Alan – Folk Ideas
15. Bascom, William – Folklore and Anthropology
16. Eliade, Mircea – Myth and Reality
17. Thapar, Romila – Cultural Pasts
18. Kosambi, D.D. – Myth and Reality
19. Sen, Amartya – The Argumentative Indian
20. Nandy, Ashis – The Intimate Enemy
21. Shiva, Vandana – Staying Alive
22. Gadgil, Madhav – Ecology and Equity
23. UNESCO – Intangible Cultural Heritage
24. Chaudhuri, Sukanta – Tradition and Modernity
25. Mukherjee, Meenakshi – Realism and Reality